निवेदन

निर्दोष है तो एक ही-
जगदीश जग-कर्तार है।
दोष गुण से युक्त सारा-
ईश का संसार है।
अतएव कवि के दोष गुण पर-
ध्यान देना व्यर्थ है।
काव्य के उपदेश से-
कुछ लाभ लेना अर्थ है॥

—लेखक

वक्तव्य

मनुष्यमात्र का यह धर्म्म है कि वह अपने को धर्मात्मा बनाए। बिना धर्म के ऐहिक और पारलौकिक सुखों की प्राप्ति नहीं होती। इसलिए इस छोटी सी पुस्तिका में संक्षेप से चार वर्णों के धर्म और साधु महात्माओं के कर्तव्य लिखे हैं तथा सामयिक कर्त्तव्य का भी दिग्दर्शन कराया है। मेरी मनोकामना है कि सब भाई इस पुस्तक को आदि से अंत तक पढ़ें और धर्म्माचरण करके सुख शान्ति प्राप्त करें।

भवदीय—

भूरालाल कथाव्यास

शाहपुरा (राजपूताना)

॥ ओ३म् ॥

व्यासोपदेश ।

अथेश्वर स्तुति-प्रार्थना ।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ ऋ० अ० १ । मं० ९ ॥

भावार्थ

सृष्टिकर्ता दुःखहर्ता, देव देव जगत्पते !
सम्पूर्ण दुर्गुण दुःखदायक, दूर कीजे शुभमते ! ॥ १ ॥

यतोयतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु । शंनः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥ यजु० अ० ३६ । मं० २२ ॥

भावार्थ

हर समय पर हर जगह, भगवन् दया की दृष्टि से ।
कीजे प्रजा, पशु सह हमारा, त्राण अमृत वृष्टि से ॥ १ ॥

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापवि-
द्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्
व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ यजु० अ० ४० । मं० ८ ॥

भावार्थ

सर्वव्यापक शीघ्रकारी, सर्व शक्तीमन्त है ।
शुद्ध सर्वोपरि सनातन, स्वयंसिद्ध अनन्त है ॥ १ ॥
अपनी सनातन जीव रूपा, जो प्रजा को वेद से ।
परिचित किया है बोध देकर, सुकृत दुष्कृत भेद से ॥ २ ॥
वह अज अछिद्र अपाप है, अज्ञान दुःखों से परे ।
द्वेष बंधन से रहित, उस ईश को बंदन करे ॥ ३ ॥

गुरुमंत्र ।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य
धी महि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

भावार्थ

सर्वज्ञ-सर्वाधार-सर्वग, सत्यचित् आनन्दमय ।
शुद्ध-बुद्ध-विमुक्त मंगल रूप मुददाता अभय ॥ १ ॥
श्रेष्ठ गुणगणधाम, पूरण काम मुक्ति-प्रदायक ।
विश्व-बन्द्य, अनन्य नित्य, अनन्त विश्व विनायक ॥ २ ॥

ध्यान धरते हैं तुम्हारा, हे प्रभो करुणा निधे।
दुष्कर्म से कर दूर मति, शुभ कर्म में कीजे विधे ॥ ३ ॥

धर्म के दश लक्षण ।

धृतिः क्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥
(मनु० अ० ३ । श्लो ९२)

भावार्थ

धैर्य और सहिष्णुता, मन दमन चोरी छोड़ना ।
शुद्ध रहना, इन्द्रियों को, धर्म-पथ में जोड़ना ॥ १ ॥
वृद्धि बुद्धी की करें, विद्या विपुल संग्रह करें ।
सत्य पालें, क्रोध को, कर दूर पापहिं परिहरें ॥ २ ॥
दश चिह्न हैं ये धर्म के, धारण करो जिनको सदा ।
विद्वान् हो बलवान हो, आपद् न आवे फिर कदा ॥ ३ ॥

योग के आठ अंग ।

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ॥ (पातञ्जल योग० साधनपाद)

भावार्थ

यम नियम आसन और, प्राणायाम प्रत्याहार है ।
ध्यान धारण धारणादि, समाधि यों निरधार है ॥ १ ॥

योग के यह अष्ट साधन, योगशास्त्रों में कहे
अभ्यास करके वासनायें, त्याग नर सुख सों रहे ॥ २ ॥

यम नियमादि महाव्रत ।

(यम)

तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्य्यापरिग्रहा यमाः ॥
(पातञ्जल० साधनपाद ३०)

भावार्थ

मन वचन कर्म से, बर हिंसा का सदा त्यागी बने ।
सत्यग्राही-सत्यभाषी, सत्य का भागी बने ॥ १ ॥
चोरी करे नहिं वीर्य्य की, रक्षा सदा करता रहे ।
यह पांच यम हैं, विषय भोगों से सदा डरता रहे ॥ २ ॥

यमों के लाभ ।

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ॥
(पातञ्जल सा० पा० ३५)

भावार्थ

वैर और विरोधनाशक, व्रत अहिंसा जानिये ।
प्रेम जग जीवन सुधा है, वैर को विष मानिये ॥ १ ॥

वैर को यदि त्याग दें, तो दूर होगा द्वेष भी ।
मुक्ति साधन में कभी, बाधा न होगी लेश भी ॥ २ ॥

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाशयत्वम् ॥
(पात० सा० पा० ३६)

भावार्थ

सत्य सेवन में क्रिया के, शुभ फलों का वास है।
मोह मिथ्या में महा दुख, द्वन्द्व और विनाश है ॥ १ ॥
सत्यसेवी सम्पदाएं, प्राप्त करते स्वर्ग की।
चाह क्यों होती उन्हें, धन सम्पदा अपवर्ग की ॥ २ ॥

अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥
(पात० सा० ३७)

भावार्थ

आस्तेयता से प्राप्य है, रत्नादि धन सम्पत्तियां ।
भाग्य फूटा भोगता है, चोर घोर विपत्तियां ॥ १ ॥
प्राप्त करना चाहिए, पुरुषार्थ से धन सम्पदा ।
पर-सम्पदा हरनी नहीं, आजाये यद्यपि आपदा ॥ २ ॥

ब्रह्मचर्य्यप्रतिष्ठायां वीर्य्यलाभः ॥
(पा० सा० ३८)

भावार्थ

ब्रह्मचर्य्य विधान मानो, वीर्य्य-वृद्धी के लिए।
वीर्य्य-रक्षण मुख्य है, सर्वार्थसिद्धी के लिए ॥ १ ॥
धर्म-यश-बल-बुद्धि-विद्या, लाभ करना इष्ट हो।
वीर्यरक्षण मात्र इसका, ध्येय और अभीष्ट हो ॥ २ ॥

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्ता संबोधः ॥
(पा० सा० ३९)

भावार्थ

'जन्म क्यों मेरा हुआ' यह जानते अपरिग्रही।
जिससे न होवे जन्म फिर, वह कार्य करते हैं वही ॥ १ ॥
इसलिये अपरिग्रही को, मोह होता है नहीं।
नर जन्मरत्न अमूल्य को, वह व्यर्थ खोता है नहीं ॥ २ ॥

नियम ।

शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥

भावार्थ

सदा स्वच्छ पवित्र रह, संतोष कर संतुष्ट हो।
चाहे अनेकों कष्ट हो, पर धर्म का व्रत पुष्ट हो ॥ १ ॥

सच्छास्त्र वेदादिक पढ़ें, प्रणव को जपता रहे ।
आत्म अर्पण के सहित, प्रभु-भक्ति में ममता रहे ॥ २ ॥
इन पांच नियमों का सदा, पालन करो कल्याण-हित ।
भूल से भी वासनाओं में, कभी देवो न चित ॥ ३ ॥

मुक्तिसाधन चतुष्टय ।

साधन चतुष्टय मुक्ति के, वैराग्य और विवेक है ।
श्रद्धा तितिक्षा शम दमादिक, षट् सम्पत्ति नामक एक है ॥१॥
मुमुक्षुता यह चार हों, बस मुक्ति साधन जानिये ।
यह तत्व हैं कल्याण के, तुम अन्यथा नहिं मानिये ॥ २ ॥

पालनीय नियम ।

सब सत्यविद्या और विद्या से पदारथ जानते ।
उन सबों का एक ईश्वर, आदिमूल बखानते ॥ १ ॥
सत्यचित् आनन्दरूपी, न्यायकारी निर्विकार ।
सर्वशक्तीमन्त-अनुपम, अज-अमर-जग का अधार ॥ २ ॥
सृष्टिकर्त्ता-सर्वव्यापक-नित्य शुद्ध अनन्त है ।
सर्वेश, दिव्य, दयालु, सर्वंग, सर्व शक्तीमन्त है ॥ ३ ॥
सत्य विद्याओं का पुस्तक, वेद अनुपम ग्रंथ है ।
उसका-पठन-पाठन मनन, ही आर्य्यगण का पन्थ है ॥ ४ ॥
ग्रहण करना सत्य का, मिथ्या को मन से टालना ।
रहें उद्यत आर्य्य इसमें, झूठ से हट भागना ॥ ५ ॥

धर्म के अनुसार, सत्यासत्य का निर्धार कर।
हर काम को करते रहें, सब आर्य्य पूर्ण विचार कर॥ ६॥
संसार का उपकार करना, आर्य्य कुल का ध्येय है।
अनुपकारी कार्य्य कुछ भी हो सदा वह हेय है॥ ७॥
धर्म के अनुसार सब से प्रीति का व्यवहार हो।
हो अविद्या नाश, विद्या का सदा परिचार हो॥ ८॥
आप ही की उन्नती को, चित्त में नहिं आनिये।
पर-उन्नती में आप की भी, उन्नती कर मानिये॥ ९॥
सर्व सामाजिक नियम, रक्षार्थ पर आधीन है।
सर्व हितकारी नियम के, अर्थ सब स्वाधीन है॥ १०॥

उपयोगी उपदेश।

याम के * तड़के उठो, भगवन्त का चिन्तन करो।
ईशवन्दन धर्मचिन्तन, अर्थ अपना मन करो॥ १॥
निश्चिन्त हो इस के अनन्तर, स्वच्छ शौच स्नान से।
और सन्ध्योपासनादिक, कर्म्म कीजे ध्यान से॥ २॥
स्वास्थ्य साधन के लिये, वन गमन प्रातः कीजिये।
शुद्ध वायूरूप ईश्वरदत्त अमृत पीजिये॥ ३॥

---

* ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्म्मार्थौ चानुचिन्तयेत्। कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्वार्थमेव च॥ मनु० अ० ४। श्लोक ९२॥

हो अशन शयनादि क्रम से, नियम पूर्वक पालिये ।
समय रत्न अमूल्य है, पल एक व्यर्थ न टालिये ॥ ४ ॥

न्यायकारी ईश को, सर्वज्ञ मन में मानिये ।
अतएव रञ्चकमात्र मन में, पाप को मत आनिये ॥ ५ ॥

बुद्धिनाशक धर्महारी, लोभ काम: क्रोध है ।
इनमें लगाया चित्त, जिसको जानिये कि अबोध है ॥ ६ ॥

कौन मैं हूं, कौन मेरे, और क्या सम्बंध है ।
जो जानता न विवेक से, वह बड़ा भारी अंध है ॥ ७ ॥

मित्र-सुत सम्बंध बांधव, क्षणिक सुख सम्पत्ति है ।
ईश-चिन्तन के विना, संसार घोर विपत्ति है ॥ ८ ॥

देह जब लों स्वस्थ है, वृद्धत्व जब लों दूर है ।
धर्मसंचय क्यों न करते, काल आता क्रूर है ॥ ९ ॥

पाप करते हो हज़ारों, पेट भरने के लिये ।
अंतत: क्या यत्न होगा, मित्र ! मरने के लिये ॥ १० ॥

गर्व जन धन सम्पदा का, जो करे वह मूढ़ है ।
क्या वस्तु हैं ये और कब तक, तत्व इसका गूढ़ है ॥११॥

संसार पूर्ण असार है, यदि सार है तो चार है ।
साम्यता, सौजन्यता, सत्संग, पर-उपकार है ॥ १२ ॥

पूजते हैं लोग ज्यों, सम्मान से धनवान को ।
क्यों न हो कल्याण वैसे, जो भजें भगवान को ॥ १३ ॥

ताप[1]-ताड़न[2]-छेद[3]-घर्षण[4], स्वर्ण की पहिचान है।
कुल[5]-शील[6]-श्रुति[7] वा कर्म से, नर रत्न का अनुमान है ॥१४॥
परम[8] तप है शान्ति परता, पूर्ण सुख सन्तोष है।
लोभ तृष्णा रोग है, धर्मार्थ नाशक रोष है ॥ १५ ॥
संसार में सत्संग सम्यक्, ब्रह्मनिष्ठों की करो।
सत्य मिथ्या धर्म अधरम, छानकर चित में धरो ॥ १६ ॥
मानसिक-बल देह-बल की, पूर्ण वृद्धी के लिए।
पुरुषार्थ करना चाहिए, धर्मार्थ सिद्धी के लिए ॥ १७ ॥
सब कर्म कीजे युक्ति युक्त, विवेक और विचार से।
मिताहारी, मिताभाषी, मितव्यय व्यवहार से ॥ १८ ॥
कटु-तीक्ष्ण मद्य-अमेध्य-तामस, भोजनों को टालिये।
शुद्ध सात्विक भोजनों से, इन्द्रियों को पालिये ॥ १९ ॥
नट नर्त्तकी के नाच गायन, द्यूत में फंसना नहीं।
द्यूत होता हो जहां, क्षण एक भी बसना नहीं ॥ २० ॥
आर्य्य मर्यादा को पालो, सभ्यता स्वीकार लो।
करणीय कर्मों को प्रथम ही, ज्ञान से निरधार लो ॥ २१ ॥
धूर्त्त जन पाखंडियों से, चेत करके चालिये।
नर विधर्मी का सदा, सहवास करना टालिये ॥ २२ ॥

---

(१) तपाना (२) चोटमारना (३) काटना (४) रगड़ना (५) वंश (६) स्वभाव (७) धर्म।

(८) संतोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत्।
संतोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥ मनु० अ० ४ । श्लो० १२ ॥

निःशंकता से सत्यता का, ग्रहण करना धर्म है ।
मान मिथ्या मोह मद का, त्याग उज्वल कर्म है ॥ २३ ॥
नम्रता से गुरुजनों की, मान अर्चा कीजिये ।
छोटा बड़ापन छोड़, सब से प्रेम चर्चा कीजिये ॥ २४ ॥
सुखी धर्माचारियों से, मित्रता करते रहो ।
दान देकर निर्बलों, दुखियों का घर भरते रहो ॥ २५ ॥
मन इन्द्रियों के वेग में, तुम भूल कर पड़ना नहीं ।
पुण्य-पथ को पालना, अघ ओघ में अड़ना नहीं ॥ २६ ॥
प्रेम देशी से करो, जिससे रहे प्राचीनता ।
निर्भीकता से प्राप्त करना चाहिए स्वाधीनता ॥ २७ ॥
पुरुषार्थ द्वारा जो मिले, उसमें करो संतुष्टता ।
पर-वैभवों को देख कर जलना यही है दुष्टता ॥ २८ ॥
दुर्वाक्य-मिथ्या-चाटुता, छल-दंभ-पापाचार है ।
प्रिय वाक्य, सत्य, यथार्थता, निर्दंभ, सद्व्यवहार है ॥ २९ ॥
वेदविद्या वृद्धि के हित, गुरुकुलों को दान दो ।
धर्मोपदेशक साधुगण को, प्रेम से सम्मान दो ॥ ३० ॥
नियम * से गुरुगेह बस कर, वेद विद्या प्राप्त कर ।
गृह धर्म पालन में लगो. तुम, ब्रह्मचर्य समाप्त कर ॥ ३१ ॥
गुण धर्म शील समान कन्या, देख कर वर लीजिये ।
पाशविक सी काम क्रीड़ा, व्यर्थ की नहिं कीजिये ॥ ३२ ॥

---

* वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् । अविप्लुत ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ॥ मनु० अ० ३ । श्लोक २ ॥

भामिनी सहधर्मिणी है, कामिनी कहना नहीं।
धर्म मिल कर पालिये, व्यभिचार में बहना नहीं॥ ३३ ॥
यज्ञ तप व्रत दान में, सहयोग देने के लिए।
भामिनी है, धर्मनौका, पार खेने के लिये ॥ ३४ ॥
विवश हो नहिं वासना हित, पूर्ण ऋतुगामी बनो।
ऐसा न हो कि सदैव ही तुम, काम के कामी बनो॥ ३५ ॥
नियम के सहवास से, सन्तान भी बलवान हो।
श्रीमान हो, धीमान हो, वह पूर्ण विद्यावान हो॥ ३६ ॥
पूर्ण सद्-आचार पूर्वक, वर्ण-आश्रम धर्म को।
पालिये परिवार सह तुम, टालिये दुष्कर्म को॥ ३७ ॥
योग साधन कीजिए, जिससे मिले एकाग्रता।
शान्ति सुख भरपूर हो, हो दूर मन की व्यग्रता॥ ३८ ॥
साफल्यता नर-जन्म की, होती है बस इस रीति से।
सन्तोष सुख अपनाइये, सुख पाइये प्रभु प्रीति से॥ ३९ ॥४

चार वर्णों के धर्म ।

(ब्राह्मण)

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥
(मनु० अ० १ । श्लो० ८८)

भावार्थ

पढ़ना पढ़ाना यज्ञ का, करना कराना रीति से ।
दान दें वा दान लें, षट्कर्म पालें प्रीति से ॥ १ ॥
कर्म हैं ये ब्राह्मणों के, दिव्य भावों से भरे ।
इहलोक वा परलोक में, सुख शान्तिदाता हैं खरे ॥ २ ॥
विविध विद्या से निपुण हो, विप्र जग कल्याणहित ।
संसार को उपदेश दें, धर्मार्थ के साधक अमित ॥ ३ ॥
यज्ञ के उपचार से, जल वृष्टि हो मनभाविनी ।
जीव हों बल वीर्य्यशाली, वायु रोग नशाविनी ॥ ४ ॥
जो ब्रह्मवर्चस वेदवित्, सद्-धर्म सेवी आर्य्य है ।
शील शौचाचार धारक, विप्र जगदा-चार्य्य है ॥ ५ ॥

(क्षत्रिय)

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥
(मनु० अ० १ । श्लोक ८९)

भावार्थ

क्षत्रियों का धर्म है, यह प्रेम से पालें प्रजा।
दान दें यज्ञादि कर, जगकीर्त्ति की रोपें ध्वजा ॥ १ ॥

वेद विद्यायें पढ़ें, विषयादि * से टलते रहें।
पंच क्षात्रिय धर्म को ले, नीतिपर चलते रहें ॥ २ ॥

यम नियम शौचाचार का, उपदेश लें श्रुतिशास्त्र से।
धर्मरक्षा के लिए, सज्जित रहें शस्त्रास्त्र से ॥ ३ ॥

नीति का यह वाक्य हमको, इस समय भी याद है।
राज के गुण प्रजा सीखे, यह अचल मर्याद है ॥ ४ ॥

भूप यदि धर्मिष्ट हो, तो सब प्रजा धर्मिष्ट हो।
जो भूप पापी हो, प्रजा का पाप करना इष्ट हो ॥ ५ ॥

समभाव से समभाव होगी, भूप के अनुसार ही।
यथा राजा तथा जनता, नीति गाथा गा रही ॥ ६ ॥

वह वीर क्षत्रिय जाति है, जो देश-पालन के लिए।
शीतोष्ण वर्षा में रही रत, सैन्य चालन के लिए ॥ ७ ॥

वह जाति यदि उन्माद से, सुख भोग में लवलिप्त हो।
उस देश की फिर दुःख गाथा, क्यों भला संक्षिप्त हो ॥८॥

आराम के आदी हुए, उस जाति के सन्तान है।
जातीयता के लक्ष पर, कुछ भी न उनको ध्यान है ॥ ९ ॥

क्या खबर उनको प्रजा पर, जुल्म क्या क्या हो रहे।
आप मद में मस्त होकर, तान चद्दर सो रहे ॥ १० ॥

---

* इन्द्रियाणां जयेयोगं समातिष्टे दिवानिशम् । जितेन्द्रियोहि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजा ॥ मनु० अ० ७ । श्लोक ४ ॥

धन फूंकते हो खेल के, सब कारखानों के लिये।
दीन बांधव रो रहे हैं, चार दानों के लिये ॥ ११ ॥

किस काम के हैं खेल, यह किस अर्थ की हैं मस्तियां।
अन्याय के आघात से, बरबाद हैं सब बस्तियां ॥ १२ ॥

उन्मत्तता उद्दंडता की, चाल क्षत्रिय वंश की।
हैं सभी सामग्रियां यह, देश के विध्वंश की ॥ १३ ॥

वीरगण ! किस ढङ्ग की, हा ! नींद तुमको आ गई।
वीरता विद्वानता कर्मण्यता-को खा गई ॥ १४ ॥

अब भी बचालो आपकी, जातीयता जो कुछ रही।
हानि अब भी है नहीं, जब से जगे तब से सही ॥ १५ ॥

शीतोष्ण वर्षा वात के, सुख दु:ख सहना सीख लो।
जो मिले तुमको उसी में, मस्त रहना सीख लो ॥ १६ ॥

चाह हो यदि द्रव्य की तो, न्याय से संग्रह करो।
लोभ कर राजा प्रजा में, क्यों वृथा विग्रह करो ॥ १७ ॥

कामधेनु वसुन्धरा है, दिव्य रत्नों से भरी।
प्रजारूपी वत्स की तुम, कीजिये रक्षा खरी ॥ १८ ॥

विषय के हित जो करोगे, व्यर्थ खाली कोष को।
चार दिन में भोगलोगे, आप अपने दोष को ॥ १९ ॥

द्यूत-मृगया-मद्य सेवन, राजकुल में रोग है।
यह तीन हों जिसके वहां, 'गृह सर्प' सा संयोग है ॥२०॥

(वैश्य)

पशूनां रक्षणंदानमिज्याऽध्ययनमेव च ।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥
(मनु० अ० १ । श्लोक ९०)

भावार्थ

पशु पालना वा दान देना, यज्ञ का करना सदा ।
वेद पढ़ व्यापार से, संग्रह करे धन सम्पदा ॥ १ ॥
खेती करे जिससे सदा, उत्पन्न होता अन्न है ।
षट्कर्मकर्ता वैश्य सम्प्रति, धर्म से सम्पन्न है ॥ २ ॥
देश भारत में जहां, कृषिकर्म ही उद्योग है ।
हो गई फलहीन खेती, कर्म का संयोग है ॥ ३ ॥
दुष्काल तो इस देश में, पड़ने लगा हर बार है ।
धन सम्पदा की क्या कहें, बस पेट भरना भार है ॥ ४ ॥
दीन भारत हो गया, सर्वस्व अपना खोचुका ।
व्यापार तो इस देश से, बस नष्ट प्रायः हो चुका ॥ ५ ॥
देश की कारीगरी का, तो बड़ा बद हाल है ।
व्यवहार में बाज़ार में, केवल विदेशी माल है ॥ ६ ॥

(शूद्र)

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुःकर्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥
(मनु० अ० १ । श्लोक ९१)

भावार्थ

शूद्र का है धर्म सेवा, सर्वदा करते रहें ।
देश की कठिनाइयों को, युक्ति से हरते रहें ॥ १ ॥
सर्वेश के संसार में, व्यवहार एक समान है ।
वर्ण से क्या अर्थ है, सब कर्म का सन्मान है ॥ २ ॥
विश्व मुख है-विप्र-क्षत्रिय, विश्व के भुजदंड हैं ।
वैश्य उरु-चरण ज्यों है, शूद्र अंग अखंड हैं ॥ ३ ॥
वेद में इस विश्व के, यों चार अंग विभक्त है ।
धर्मार्थ साधन में सकल, स्वाधीन और ससक्त है ॥ ४ ॥
मुख हाथ जंघायें न हों तो, कौनसा आकार है ।
सब हों अगर पग हों नहीं, तब कौन के आधार है ॥५॥
इसलिये यह चारहों हैं, अंग एक ही देह के ।
जो चाहते शुभ देह तो, तोड़ो न नाते नेह के ॥ ६ ॥
अवयवों के काटने से, अंग भी कट जायगा ।
संग्रह बिना के त्याग से, तो संघ भी घट जायगा ॥ ७ ॥

साधु संन्यासी ।

आगारादभिनिष्क्रान्तः पवित्रो पचितो मुनिः ।
समुपोढेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥
(मनु० अ० ६ । श्लो० ४१)

भावार्थ

गार्हस्थ्य धर्मों को यथाविधि, पाल करके अन्त में ।
गृह छोड़ संन्यासी बने, धर धारणा भगवन्त में ॥ १ ॥

संन्यस्थ उसको जानिये, जिसका अनूपम त्याग है।
है न इच्छा लालसा, नहिं राग वा अनुराग है ॥ २ ॥
हैं त्यागशील सु-शान्त सन्त, अनेक भारत देश में।
स्वार्थ हिंसा वैर तो, होता न उनके लेश में ॥ ३ ॥
दृष्टान्त देने क्यों पड़े, हमको पुरातन काल के।
लोकहित रत सन्तगण भी, थे हमारे हाल के ॥ ४ ॥
सर्वार्थ गौतम बुद्ध ने, 'सर्वार्थ' का साधन किया।
व्रत अहिंसा, कर्म-रतता, धर्म प्रतिपादन किया ॥ ५ ॥
मानते हैं बोध[1] उनका, चीन और जापान में।
शिक्षा विदेशी लोग भी, लेते थे हिन्दुस्तान में ॥ ६ ॥
काल गति से लुप्तप्रायः, धर्म वैदिक हो गया।
देश भर ही नास्तिकों से, जब अवैदिक हो गया ॥ ७ ॥
वेदवित् आचार्य्य शङ्कर[2] नाम से उत्पन्न हो।
फैला दिया सद्धर्म्म को, सत्कर्म से सम्पन्न हो ॥ ८ ॥
शंख की ध्वनियां सुना कर, शुद्ध सबको कर दिये।
सद्धर्म में जो अबुद्ध थे, फिर बुद्ध उनको कर दिये ॥ ९ ॥
अज्ञान से जो अनार्य्य थे, वे आर्य्य पथपर हो गये।
शिक्षा समुज्वल वेद की ले, धर्म्मतत्पर हो गये ॥ १० ॥
इस देश में तो आदि ही से, शुद्धि[3] होती आ रही।
संस्कार ही से आर्य्यगण की, वृद्धि होती आ रही ॥ ११ ॥

---

(१) ज्ञानोपदेश, (२) शंकराचार्य्य, (३) देखो अंत में शेषसंग्रह।

देशप्रेमी सन्त नानक, और गुरु गोविंद से ।
यदि न होते हिन्दुता, उठ भागती इस हिन्द से ॥ १२ ॥
इसके अनन्तर धर्म पर, आई बड़ी आपत्तियां ।
दस्युओं द्वारा लुटे, सब धर्म धन सम्पत्तियां ॥ १३ ॥
धर्म क्या है, कर्म क्या है, लोक यों संभ्रान्त था ।
ऐसे अतुल संघर्ष में, बस धर्म भी तो श्रान्त[1] था ॥ १४ ॥
धर्म के उद्धारहित, सच्छिष्य विरजानन्द[2] का ।
देश में पैदा हुआ, दाता अतुल आनन्द का ॥ १५ ॥
शिक्षा दयानन्दी जगत् को, पूर्ण हितकारी हुई ।
देश को, चर्चा सनातन-धर्म की प्यारी हुई ॥ १६ ॥
वेदविद्या से उजाला, हो गया संसार में ।
बोध पाकर लोग समझे, सार और असार में ॥ १७ ॥
ऋषिजन्म को सौ वर्ष पूरे, आज मित्रो ! हो चुके ।
कितना बढ़ाया धर्म अब लों, और कितना खो चुके ॥१८॥
आज ऐसा प्रश्न ऋषिवर, पूछते हैं स्वर्ग से ।
देश के संन्यासियों से, और साधू वर्ग से ॥ १९ ॥

षट्पाद

वैदिकधर्म सुकर्म मर्म संसार पिछाने ।
उत्पथ से कर दूर, सुपथ पर मन को आने ॥

---

(१) थकित (२) स्वामी दयानन्द सरस्वती ।

यज्ञ, दान, तप, धर्म, धरा पर वृद्धी पावें ।
पाप पुञ्ज हो दूर, पुण्य की सिद्धी पावें ॥
दयानन्द ऋषिवर्य का, यह हार्दिक संकल्प था ।
सौ वर्षों का समय यह, पूर्तिहेत क्या अल्प था ॥ १ ॥
खैर हुआ जो हुआ, बात आगे पर छोड़ो ।
जिससे हो संसार आर्य्य, वह साधन जोड़ो ॥
धर्मवृद्धि के हेतु, कर्म तुम करना सीखो ।
वैदिक-शिक्षा सर्व जगत् में भरना सीखो ॥
सौ वर्षों की शिथिलता, रहे न ऋषि के मन चुभी ।
शीघ्र सुने संसार सब, बजती वैदिक दुन्दुभी ॥ २ ॥

शेष-संग्रह

(शुद्धि के कतिपय प्रमाण)

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः ।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः ॥

(ऋग० १० । १३७ । १)

अर्थ—जो गिरे हैं उनको फेर उठाओ, जिन्होंने पाप किया है या जिनका जीवन मैला हो गया है उनको फिर से जीवन दो और शुद्ध करो ।

इन्द्रं वर्द्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।
अपघ्नन्तो अराव्णः ॥

(ऋग० ९ । ६३ । ५)

अर्थ—ईश्वर की महिमा बढ़ाते हुए, सब संसार को आर्य्य बनाते हुए और अदानियों को पछाड़ते हुए आगे बढ़ें ।

दश हज़ार म्लेच्छों की शुद्धि के लिए भविष्य-पुराण प्रतिसर्ग पर्व खंड ४ अध्याय २१ में लिखा है:—

सरस्वत्याज्ञया कण्वो मिश्रदेशमुपा ययौ ।
म्लेच्छान् संस्कृतमाभाष्य तदा दशसहस्रकान् ॥
वशीकृत्य स्वयं प्राप्तो ब्रह्मावर्त्ते महोत्तमे ।
ते सर्वे तपसा देवीं तुष्टुवुश्च सरस्वतीम् ॥
सपत्नीकांश्च तान् म्लेच्छान् शूद्रवर्णाय चाकरोत् ।
कारु वृत्तिकराः सर्वे बभूवुर्बहुपुत्रकाः ॥
द्विसहस्रास्तदा तेषां मध्ये वैश्या बभूविरे ।
तदा प्रसन्नो भगवान् कण्वो वेदविदांवरः ॥
तेषां चकार राजानं राजपुत्र पुरं ददौ ।

अर्थ—मिश्र देश में जाकर कण्व ऋषि दश हज़ार म्लेच्छों को शुद्ध कर भारतवर्ष में लाये, उन सब को शूद्रवर्ण में रक्खा और उनमें से दो हज़ार वैश्य (महाजन) हो गये, तब ऋषि ने प्रसन्न होकर उनको राजा बनाया ।

आपस्तम्ब में भी लिखा है ।

तेषां स्वयमेव शुद्धिमिच्छतां प्रायश्चित्तान्तरमुपनयनम् ॥ आपस्तम्ब १ । १ । १ । १ ॥

अर्थ—यदि वे अपनी शुद्धि की इच्छा करें तो उनको प्रायश्चित्त कराकर यज्ञोपवीत दे देना चाहिये ।

तत ऊर्ध्वं प्रकृतिवत् ॥ आपस्तम्ब १ । १। २ ॥

अर्थ—प्रायश्चित्त के अनन्तर प्रायश्चित्ती अपनी प्रकृति अर्थात् अपने असली वर्ण को प्राप्त करता है।

सर्वाणि ज्ञातिकर्म्माणि यथापूर्वं समाचरेत् ॥

(मनु० अ० ११ । श्लो० १८८)

अर्थ—शुद्ध हुआ पुरुष पहिले की तरह अपने वर्ण के कर्म करे।

अनार्य्यों को आर्य्य बनाने के प्रमाण में भारत के प्रसिद्ध विद्वान् श्री० डाक्टर भाण्डारकर एम० ए० ने नासिक ज़िला में कितने ही शिलालेख ढूंढ निकाले हैं उनमें का एक निम्न-लिखित है।

"सिधं ओतराहम दत्तामिति यकस योणकस धंमदेव पुतस इन्द्राग्नि दतस धम्मात्मना"

अर्थ—उत्तर (सरहद) से आए हुए यवन के पिता को संस्कार कर धर्म्मदेव और पुत्र को इन्द्राग्निदत्त नाम देकर आर्य्य बनाया।

इति शम् ॥